ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218
PP. NO.- 208-211
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

अरण्यसंस्कृति की वैदिक अवधारणा

डॉ0 महेश कुमार द्विवेदी
सहायक आचार्य
श्री एकरसानन्द आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, मैनपुरी (उ०प्र०) भारत

सारांश – भारतीय संस्कृति का मूल ग्रन्थ वेद है। वेद और इस पर परवर्ती साहित्य प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से श्रुति परम्परा से अनुप्राणित रहा है। इसीलिए इसे श्रुति भी कहते हैं।

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम् के अनुसार संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा कल्पसूत्र भी वेदों में ही परिगणित हैं । भारतीय धर्म, दर्शन, समाज, राजनीति, भाषा , अर्थनीति एवं कलाएं आदि के उद्भव एवं आरम्भिक ज्ञान के लिये वेदों पर समाज आश्रित रहा है। वैदिक साहित्य में मन्त्रसंहिता ग्रन्थ के अनन्तर ब्राह्मण भाग तथा इनके अनन्तर आरण्यक ग्रन्थ उसके भी अन्तिम भाग उपनिषद माने गये हैं। ज्ञान, कर्म, और उपासना के प्रतिपादक होने से ब्राह्मण तथा आरण्यकों में विशेष अन्तर नहीं है। वर्तमान में कुल आठ ही आरण्यक उपलब्ध हैं। ऐतरेय आरण्यक, शांखायन आरण्यक , वृहदारण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, जैमिनीय आरण्यक तथा छान्दोग्य आरण्यक आदि।

आरण्यक ग्रन्थ विशेष रूप से यज्ञादि कर्म तथा ब्रह्मविद्या के बोधक होने के कारण अरण्यों अर्थात् वनों में पढ़ाये जाने के कारण उन्हें आरण्यक कहा गया। इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध अरण्यसंस्कृति से रहा ५ वेदों के भाष्यकार आचार्य सायण ने अरण्ये एव पाठ्यत्वादारण्यकमुच्यते ऐसी परिभाषा दी है। अरण्य शब्द से पाणिनि व्याकरण के अनुसार भव अर्थ में वुञ् प्रत्यय करने पर आरण्यक शब्द निष्पन्न होता है।

अरण्येध्ययनादेव आरण्यकम् अरण्येनूच्यमानत्वात् आरण्यकम् अरण्ये भवमारण्यकम्

तीन व्युत्पत्तियां स्पष्ट रूप से इनकी अरण्य संस्कृति को रेखांकित करती है। ये ऐसे ज्ञान ग्रन्थ हैं जिसमें कर्म यज्ञादि कार्यों के अतिरिक्त आत्मबोध की विद्या का भी निरूपण है। इसीलिये इनके अध्येता शिष्य प्रशिष्य नगरों से दूर अरण्य गुरूकुलों में शान्त एकान्त वातारण मां इनके अध्ययन के लिये जाते थे। इन्हीं अध्ययन केन्द्रों में विद्या जिज्ञासुओं के लिये कर्मकाण्ड के साथ आत्मिकचेतना का विकास होता रहा। यही आध्यात्मिक चेतना भारतीय ज्ञान परम्परा का आधार है। अतः भौतिकवादी पुरुष की निन्दा करते हुए उपनिषद् कहता है–

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामाभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्वि इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।। **–मु0उ0**

इसलिए भौतिकज्ञान आत्मिक के बिना अपूर्ण है या एकाङ्गी है। सम्भवतः इसीलिये सायण ने तैत्तरीय आरण्यक में वेदों की यह भी व्याख्या दी है– इष्टप्राप्ति– अनिष्टपरिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थः वेदयति स वेदः दृ अर्थात् इष्टप्राप्ति के साथ दृ साथ दुष्परिणाम से निवृत्ति का उपाय जो बताये वही वेद है। इसीलिये ऋग्वेद में सा प्रथमा संस्कृतिः विश्ववाराः– विश्व के लिये प्रथम संस्कृति वैदिक ही है कहा गया।

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोध्येयो ज्ञेयश्च ..... षडङ्ग वेदाध्ययन और बोध ही नवोन्मेष, नवचिन्तन की ओर प्रेरित करता है।

वेदों में विभिन्न संस्कृति– अध्यात्म की संस्कृति हो या भौतिक विज्ञान की या सामाजिक संरचना समस्त संस्कृतियों का अभ्युदय ऋषियों की मेधाशक्ति से ही संभव हो पाया है। यान्त्रिक क्षेत्र में यजुर्वेद का यह मन्त्र–

वातानां यन्त्राय, ऋतूनां यन्त्राय, दिशां यंत्राय
तेजसे यन्त्राय, ओजसे यन्त्राय **(तै.सं.1.6.1.2)**

वातयन्त्र से अभिप्राय वायुविज्ञान सम्बन्धी यन्त्र। ऋतु यन्त्र से आशय मौसम बोधक यन्त्र। तेजोयन्त्र से तात्पर्य प्रकाश का ज्ञापक यन्त्र और ओजोयंत्र ऊर्जा की वस्तुस्थिति को बताने वाला यन्त्र। इन सभी का सम्बन्ध शान्तप्रिय, प्राकृतिक परिवेश अरण्यों के वे तपोवन ही थे जहां ऋषियों महर्षियों ने इन यन्त्रों का उद्भव किया । वेदों में राष्ट्र और देश की समृद्धशाली वैश्विक संस्कृति है– अथर्ववेद के एक सूक्त में– त्वं राष्ट्राणि रक्षसि (19.30.3) में– देशोपसर्गा के द्वारा देश या राष्ट्र पर दैवी प्रकोप से रक्षा की प्रार्थना की गयी है। राष्ट्रोन्नति के लिये तीन प्रमुख गुण बताये गये हैं– यजुर्वेद के इस मंत्र के अनुसार–

स्वराजस्थ, जनभृतस्थ, विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त (यजुर्वेद 10.4)

1. राष्ट्र स्वाधीन हो 2. जनभृतस्थ यानि जनहितकारक हो 3.विश्वभृतस्थ यानि विश्व के अभ्युदय के लिये क्रियाशील हो ऐसी उदात्त संस्कृति ही वसुधैव कुटुम्बकम् जैसी एक और नेक परिवारवादी संस्कृति की उन्नायक रही है। यही हमारे आदर्श और संस्कृति विश्व मे भारत के विश्वगुरुत्व को रेखांकित करते हैं।

भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलयोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।।

अनुशासन और समर्पण समन्वित भाव से तप और दीक्षा नामों से वेदों में सर्वत्र व्याख्यायित हैं। जो अरण्य संस्कृति के प्रमुख आयामों में अधिगृहीत हैं।

देवत्व वेदों में प्रतिपादित तीन प्रमुख श्रेणियाँ देवताओं की हैं–1. पृथ्वीस्थानीय 2. अन्तरिक्ष स्थानीय 3. द्युस्थानीय इनमें पृथ्वीस्थानीय देवताओं में प्रमुख अग्नि हैं यह अग्नितत्व भौतिक से लेकर परमात्मा तक का परिचायक है। अग्नि के विराट रूप का वर्णन करते हुए वेद कहता है–

चत्वारिश्रृङ्गा त्रयोस्य पादाः द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोस्य, त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्या आविवेश।।

चार सींग– भौतिक अग्नि, जलीय अग्नि, सूर्याग्नि, विद्युत अग्नि

तीन पैर– पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक

दो शिर– नित्य , कार्यी

सात हाँथ– सात जिह्वाएं–

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः।। (मु.उ.–1.2.4)

त्रिधाबद्धः –भूत, भविष्य और वर्तमान ले सकते हैं।

अग्निरूपी महादेव मर्त्यलोक में प्रत्येक प्राणि के अन्दर व्याप्त हैं। इसीलिये अथर्ववेद में इन्द्र और अग्नि का एक ही रथ में बैठकर चलने का उल्लेख है। इसका तात्पर्य यही है कि शरीररूपी रथ पर बैठकर इन्द्र यानी परमात्मा अग्नि अर्थात् जीवात्मा दोनों साथ चलते हैं। इसीलिये अग्नि से कल्याण की कामना की गयी है. यह देवतावाद का चिन्तन ,स्फुरण ऋषि चेतना के अन्तःकरण में अरण्य (एकांतस्थान) में बैठकर ही स्फुरित हुआ होगा।

अरण्य एवं वैदिक स्तुतियां– मनुष्य और समाज का जीवन वैदिक काल में वनों पर ही आश्रित रहा है। आज भी इन अरण्यों को विदीर्ण कर इसके दुष्परिणामों को मनुष्य भुगत रहा है। अरण्य और उसकी संस्कृति आज भी मानव को आरोग्य एवं समृद्धशाली जीवन पद्धति हेतु उसी प्रकार प्रासंगिक है जैसे वैदिककाल में थी। रुद्रदेव की स्तुति में रूद्राष्टाध्यायी के जिन मन्त्रों से हम अभिषेक करते हैं। उनके अनेकों मंत्रों में वनसम्पदा के संरक्षण की स्तुति की गयी है। वृक्षाणां पतये नमः, ओषधीनां पतये नमः, अरण्यानां पतये नमः, ओषधयः शान्तिः , वनस्पतयः शान्तिः, अरण्याश् चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्, भेषजमसि भेषजं, सुखं मेधाय मेध्यै इत्यादि यजुर्वेदीय मंत्रों से दीर्घायु, आरोग्य, सुख समृद्धि की वैभवशाली परम्परा के साथ अरण्यों के लिये आदर एवं समुचित संरक्षण की परम्परा समाजोन्नति का आधार रही है। आज इस वनसम्पदा को विकास के नाम पर काटने का कृत्य मानवीयकल्याणमय जीवन को असहज बनाना है। अरण्यसंस्कृति इसी जीवन पद्धति को कहा गया जिसका सम्बन्ध प्राकृतिक परिवेश में ऋषियों ने उजागर किया या आत्मचेतना में अवलोकन किया।

वैदिक साहित्य के समस्त सोपानों में प्रकृति मानव और ईश्वर के बीच सम्बन्धों का उल्लेख आध्यात्मिक स्थल के रूप में किया गया है। विशेषकर आरण्यक ग्रन्थ भी इसी अवधारणा से संपृक्त हैं। इनका मुख्य आधार वे लोग ही थे जो वनों में जाकर ध्यान , तपस्या और साधना में तल्लीन होते थे। ये ग्रन्थ व्यक्ति को ग्राम संस्कृति से दूर ले जाकर वनों में आत्मज्ञान का मार्ग प्रशस्त करते थे ५ जो सांसारिक जीवन से हटकर आत्मा की मुक्ति और ब्रह्म की प्राप्ति में सहायक होता था।

अरण्य संस्कृति– अरण्य संस्कृति वैदिक साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वैदिकसाहित्य में अरण्य पद से आशय जंगल या वन या तपोवन से है जो केवल भौगोलिक स्थानमात्र नहीं थे। बल्कि एक मानसिक तथा आध्यात्मिक अवस्था के प्रतीक भी थे। अरण्य भाग भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक, सामाजिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से भी गहन सम्बन्ध रखते थे।

अरण्य संस्कृति की वैदिक अवधारणा में अरण्य जीवन के चारों आश्रम मानसिक तथा शारीरिक विकास के केन्द्र थे । विशेष रूप से अन्तिम वानप्रस्थ आश्रम व्यक्ति ग्राम छोड़कर वन में अधिवास करने जाता था तब वहां वह ध्यान तप और समर्पण भाव से आत्मज्ञान प्राप्त करता था। अरण्य की वैदिक संस्कृति में साधना और तप का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऋषि, मुनि और साधक वनों में जाकर ईश्वर की उपासना करते थे। अरण्य एक ऐसी साधनास्थली मानी जाती थी जहां संसार के बाह्य भौतिक विकर्षणों से दूर रहकर साधक अपनी आत्मा से संवाद स्थापित कर वहां की शान्ति और प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मन को शुद्धकर ब्रह्मज्ञान की ओर अग्रसर होते थे। अरण्य संस्कृति में साधक के यज्ञादि कार्य केवल धार्मिक नहीं थे बल्कि ये समाज और प्रकृति के साथ सामञ्जस्य बनाये रखने के एक सशक्त माध्यम थे। यज्ञों के लिये आवश्यक समिधाएं, औषधियां वनों से ही प्राप्त होती थीं। इससे यह स्पष्ट है कि अरण्य वैदिक जीवन के अभिन्न अंग थे। जो न केवल सामाजिक और भौतिक जीवन में बल्कि आध्यात्मिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

वैदिक काल में अरण्य एक जीवंत इकाई थे वृक्षों, वनस्पतियों और पशुओं के हित में नदियों की स्तुति प्रकृति का सम्मान प्रमुख विषय रहे। अरण्य संस्कृति जो भारतीय सभ्यता की एक महत्वपूर्ण और विशेष शाखा है। यह संस्कृति उन समुदायों और जनजातियों की जीवनशैली और परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती है जो ऐतिहासिक रूप से वन और वन्य क्षेत्रों में निवास करती है। अरण्य का अर्थ होता है 'वन' और संस्कृति से तात्पर्य ' संस्कृतिपरक जीवनशैली' से है । इस प्रकार, अरण्य संस्कृति वन आधारित जीवन और उसके सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पहलुओं को दर्शाती है।

भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन काल से ही विभिन्न जातियां और समुदाय वन क्षेत्रों में बसे हुए थे। ये लोग अपने जीवन के लिये वन आधारित पर्यावरण पर निर्भर थे और वनों के संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करते थे।

इस संस्कृति का विकास कदाचित् आदिवासी समुदायों के जीवन से जुड़ा हुआ था, जिन्होंने वन सम्पदा को अपनी सभ्यता का एक अभिन्न अंग माना। इनका धर्म , धार्मिक चिह्न, अध्यात्म , कर्मकाण्ड आदि सब कुछ पर्यावरण पर आधारित थे। इन्होंने अपने जीवन को जंगल के अनुकूल बनाने के लिये कई प्रकार की तकनीकी विधियां विकसित की तथा वन्य जीवों और पौधों के बारे में गहरी जानकारी प्राप्त की । इस प्रकार इन्होने वन में निवास करते हुए नवीन ज्ञान विज्ञान का विकास किया।

अरण्य संस्कृति की विशेषताएं–

धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएं: अरण्य संस्कृति में धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएं भी पूर्ण रूप से वनों से प्रभावित थी। ये ईश्वर के रूप में किसी वृक्ष, पर्वत, नदी, या पशु की पूजा करते थे। अरण्य संस्कृति के वाहक ग्रन्थों को आरण्यक कहा जाता है। इनके अध्ययन से अरण्य वासियों की धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं का बोध होता है। यथा– तैत्तिरीय आरण्यक में वन में किये जाने वाले अनुष्ठानों की विस्तृत जानकारी दी गई है और यह वैदिक पूजापद्धति और वन प्रथाओं पर ध्यान केंद्रित करता है।

इसी प्रकार छान्दोग्य आरण्यक में वन में जीवन व्यतीत करने वाले वानप्रस्थ मुनियों की जीवनशैली के बारे में चर्चा की गई है जो ध्यान और अन्य आध्यात्मिक गतिविधियों में संलग्न थे।

आर्थिक गतिविधियां: वनों में निवास करने वाले समुदायों की आर्थिक गतिविधियां वन आधारित जीवन के साथ गहराई से जुड़ी थीं। वे पारंपरिक रूप से खेती, पशुपालन और वन्योत्पादों के संग्रह पर निर्भर रहते थे। इनकी आर्थिक प्रणाली प्रायः आदान– प्रदान पर आधारित होती थी, जिसमें वे वन उत्पादों को अन्य वस्तुओं के साथ बदलते थे।

सामाजिक संरचना: अरण्य संस्कृति की सामाजिक संरचना सामुदायिक और सहयोगात्मक थी। यहां परिवार और कबीले की एक मज़बूत व्यवस्था थी। सामाजिक समारोह और रीति रिवाज सामुदायिक सहयोग और सामंजस्य को प्रोत्साहित करते थे। पारंपरिक ज्ञान और कौशल पीढी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता था, जो संस्कृति के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। इसीलिये आरण्यक भी सामूहिक अनुष्ठानों की पद्धतियों पर अधिक बल देते

भारतीय संस्कृति में 4 आश्रमों का महत्वपूर्ण स्थान है– ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास । वानप्रस्थ धारण में ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं।

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेद्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।

सपत्नीक वन में निवास करने वाले पहले वानप्रस्थी तदनन्तर संन्यासी होने वाले यही व्यक्ति वन में आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा– परिचर्चा करते, वैदिक अनुष्ठान करते तथा ध्यान आदि में तल्लीन रहते थे। 70 वर्ष की आयु से लेकर जीवन के अंत तक व्यक्ति एक तपस्वी का जीवन जीता, अलौकिक, शुद्ध दर्शन पर चिंतन करता तथा जीवन को बनाए रखने के लिये जो कुछ भी उपलब्ध होता उसे स्वीकार करता था। यह जीवन भर के लंबे अनुभव और ज्ञान का लाभ उठाते हुए, यथासम्भव समाज की मदद करने में व्यतीत होता था। सम्भवतः अरण्यकों के निर्माण में इन्हीं व्यक्तियों का प्रमुख योगदान होगा। इन्हीं व्यक्तियों ने वेद, उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के दर्शन पर चिन्तन–मनन करके आरण्यकों की रचना की होगी। आरण्यक का मुख्य विषय यज्ञ का अनुष्ठान न होकर उनके अन्तर्गत अनुष्ठानों की मीमांसा है। वस्तुतः यज्ञ का अनुष्ठान एक रहस्यपूर्ण प्रतीकात्मक व्यापार है और इस प्रतीक का पूरा विवरण आरण्यक ग्रन्थों में दिया गया है। प्राणविद्या की महिमा का भी प्रतिपादन इन ग्रंथों में विशेष रूप से किया गया है।

तैत्तिरीय आरण्यक में 10 अध्याय है। इसके अध्याय दो में पांच महायज्ञों की चर्चा की गई है जिन्हें प्रत्येक ब्राह्मण को प्रतिदिन करना होता है। इसके अतिरिक्त यज्ञोपवीत, संध्या पूजा, पूर्वज पूजा आदि का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। कौशीतकी आरण्यक में मृत्यु और बीमारी से बचने के लिये अनुष्ठानो के रूप में कई उपाय बताए गये हैं। इस प्रकार आरण्यक विभिन्न दृष्टिकोणों से अनुष्ठानों का वर्णन और चर्चा करते हैं।

प्रासंगिकता व निष्कर्ष– हजारों वर्ष पुरानी यह संस्कृति आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कि तब थी। इस संस्कृति की प्रमुख विशेषता है– पर्यावरण के अनुसार जीवनशैली का निर्माण, जिसे हम पूरी तरह भूल चुके हैं किन्तु यह वर्तमान विश्व की अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी है। इस भौतिकतावादी संस्कृति जिसने हमें 'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् का पाठ पढ़ाया', हमारे पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। आज हमारे पास सुखी जीवन व्यतीत करने के सभी साधन उपलब्ध है। हम हजारों मील लंबी दूरियों को कुछ मिनटों मे पार कर सकते हैं, कोसों दूर बैठे व्यक्तियों से कोई भी बात कर सकते हैं, कहीं भी कुछ भी भेज सकते हैं, कोई पशु, पक्षी, कीट हमें कोई हानि नहीं पहुंचा सकता किन्तु फिर भी हम आनन्द महसूस नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि हमारा पर्यावरण जो हमारे जीवन की अपरिहार्य इकाई है, जिसके बिना हमारा जीवन संभव ही नहीं है वह आज हमारी वजह से खतरे में पड़ गया है। हमारी आवश्यकताएं इतनी बढ़ गयी हैं कि जिनकी पूर्ति करना हमारी प्रकृति के लिये असम्भव हो रहा है। अतः इस भौतिकतावादी संस्कृति से पर्यावरण को बचाने का एकमात्र उपाय अरण्य संस्कृति ही है जो हमें पर्यावरण के अनुकूल जीवन जीना सिखा सकती है तथा जो मानव तथा पर्यावरण दोनों के लिये उपयोगी है।

इसके साथ ही हमें अरण्य संस्कृति के अग्रदूतों का भी संरक्षण करना होगा जो भारत के विभिन्न भागों में निवासरत हैं तथा अपनी संस्कृति की रक्षा करने का प्रयास कर रहे हैं। औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के कारण जिस तीव्रगति से वनों को नुक्सान हो रहा है उसी गति से आदिवासियों का जीवन भी प्रभावित हो रहा है। उनके

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

निवासस्थानों पर फैक्ट्रीयां लगायीं जा रहीं है, उनके पूजास्थलों को तोड़ा जा रहा है , उनके जल को प्रदूषित कर दिया गया है तथा वनों की शुद्ध वायु जिसमें वे श्वसन लेते हैं धूम्र से व्याप्त कर दी गयी है। अतः अनेक आदिवासी जनजातियां या तो विलुप्त हो रहीं हैं या अपनी जीवनशैली परिवर्तित करने को बाध्य हुईं हैं। हमें इनका संरक्षण करना होगा ताकि अरण्य संस्कृति की विविधता जीवित रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वैदिकसाहित्य का इतिहास
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. ऐतरेय आरायक
4. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ख्वाचस्पतिगैरोला,
5. पातंजल महाभाष्यम
6. वैदिकसाहित्य एवं संस्कृति ख्कपिलदेव द्विवेदी,
7. शतपथ ब्राह्मण

*****